|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्‌गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 14: गुणत्रयविभागयोग

1/2 (श्लोक 1-10), शनिवार, 08 जून 2024

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/jbQLGzrIPHU

त्रिगुणों के स्वरूप व प्रकार

सनातन धर्म की दिव्य परम्परानुसार मङ्गलाचरण और दीप प्रज्वलन के साथ माँ सरस्वती की वन्दना, भगवान वेदव्यास जी, ज्ञानेश्वर जी महाराज और सद्‌गुरु स्वामी गोविन्ददेव गिरि जी महाराज के चरणों में शत शत नमन करते हुए आज के पावन सत्र का शुभारम्भ हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता श्रीभगवान् के मुखारविन्द से प्रवाहित ज्ञान की वह शाश्वत धारा है जो पाँच हज़ार वर्ष पश्चात् भी हम सभी को किस प्रकार आनन्द के मार्ग में प्रविष्ट करा रही है उसकी अनुभूति हम ले रहे हैं। नवें अध्याय में श्रीभगवान कहते हैं -

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी माँ नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।।9.34

मुझमें प्रेम से मन लगा लो, मेरे लिये कार्य तत्पर हो जाओ, मुझे अपने जीवन का केन्द्र बना लो और सम्पूर्ण शरणागति की पावन भावना अपने मन में समाहित कर लो।

चतुर्थ स्तर में ऐसे ही दसवें, ग्यारहवें अध्याय में भी हम सुन्दर उपदेश सीखते हैं और तेरहवें अध्याय में निर्गुण, निराकार परमात्मा की भक्ति किस प्रकार करने से कौन सा ज्ञान अवतरित होता है, यह उपदेश हमने पाया। जीवन में अज्ञान के कारण एक धुँधलापन होता है; क्या उचित है और क्या अनुचित इसका आकलन नहीं हो पाता।

इस चौदहवें अध्याय में श्रीमद्भगवद्गीता, वही परम ज्ञान हमें प्रदान करती है, जिससे हमें एक विवेकपूर्ण दृष्टि प्राप्त हो। हमें जीवन को समझने का नया दृष्टिकोण मिल जाये और साक्षीभाव से हम अपने जीवन को देख पाएँ। इस ज्ञान से भरी गागर को पाकर हमारा जीवन ज्ञान के मार्ग पर उन्नत होता जाये; यही श्रीमद्भगवद्गीता का आग्रह है। यह ज्ञान विवेकपूर्ण है, जो हमें बोध कराता है कि अनेक जन्मों से परमात्मा के साथ हमारा क्या परस्पर सम्बन्ध है, और किस प्रकार या किन्हीं कारणों से हम उनसे बिछड़ गये।

वह परमात्मा जो इस सम्पूर्ण चराचर सृष्टि का रचयिता और पालनकर्त्ता हैं, उनसे हमारा अनन्य सम्बन्ध पुनः प्रस्थापित हो जाये; वह परम ज्ञान इस **गुणत्रयविभागयोग** में एक बार फिर श्रीभगवान हमें दे रहे हैं। जब तक यह पावन ज्ञान हमारे अन्दर बूँद - बूँद समाहित न हो जाये, उसमें ठहराव न आ जाये, तब तक इस ज्ञान की आराधना हमारे जीवन में चलती रहनी चाहिए, हमारी सदैव यही चेष्टा रहनी चाहिए।

म्हणोनि साधकां तूं माउली ।

पिके सारस्वत तुझिया पाउलीं ।

या कारणें मी साउली । न संडीं तुझी ॥ ८ ॥

ज्ञानेश्वर जी महाराज ने सोलह वर्ष की आयु में अपने सद्गुरु के आश्रय में इस दुर्लभ ज्ञान को अपने मुखारविन्द से प्रवाहित किया। इस पद्य काव्य में ज्ञानेश्वर महाराज जी अपने गुरु से अनुनय करते हैं कि आपकी कृपा मुझ पर अवतरित हो जाये, मेरी बुद्धि ज्ञान से परिपूर्ण हो, सिद्धान्तवादी हो जायें। गुरुदेव ने ज्ञानेश्वर गुरुकुल के माध्यम से यह ज्ञान हम सब तक पहुँचाया, अतः गुरुदेव, साधकों के लिए माउली हैं। वे जिस प्रकार से अपने अंक में अपने शिष्यों को विराजित करते हैं और जब उनके पुण्य चरण हमारे जीवन में प्रविष्ट हो जाते हैं और हम उनके शरणागत हो जाते हैं, माँ सरस्वती का आशीर्वाद हमें स्वतः प्राप्त होने लगता है।

गुणत्रयविभागयोग व्यावहारिक ज्ञान का अध्याय है। ज्ञान हमारा मूल स्वरुप है परन्तु हम कैसे उससे वंचित हो जाते हैं यह बात श्रीभगवान ने यहाँ समझायी है। इस अध्याय के माध्यम से वे हमें अपने अन्दर झाँकने के लिए बाध्य करते हैं।

14.1

श्रीभगवानुवाच
परं(म्) भूयः(फ्) प्रवक्ष्यामि, ज्ञानानां(ञ्) ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः(स्) सर्वे, परां(म्) सिद्धिमितो गताः॥14.1॥

श्रीभगवान बोले – सम्पूर्ण ज्ञानों में उत्तम (और) श्रेष्ठ ज्ञान को मैं फिर कहूँगा, जिसको जानकर सब के सब मुनि लोग इस संसार से (मुक्त होकर) परमसिद्धि को प्राप्त हो गये हैं।

विवेचन: सत्रहवें अध्याय में हमने सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण को समझा। संस्कृत में गुण शब्द का एक अर्थ है - गुणधर्म, अर्थात विशेषता। प्रत्येक वस्तु का गुणधर्म होता है, जैसे सूरज का गुणधर्म प्रकाश, चन्द्र का गुणधर्म चाँदनी, जल का रसमयता या शीतलता, इत्यादि।

गुण का दूसरा अर्थ है - रस्सी, अर्थात हमें बाँधने वाली। यह रस्सी एक अदृश्य मानसिक बन्धन है जिसके द्वारा इन तीन गुणों के साथ हम इस संसार में बँध जाते हैं।

इस बन्धन के असली रूप को न जानकर, इसके बन्धन में जकड़े हुए, हम इसे ही अपना स्वरुप मानने लगते हैं। अपने मूलस्वरूप को विस्मृत कर हम कुछ विशेष कर नहीं पाते। जैसे कोई विद्यार्थी अच्छे गुणों के फलीभूत पढ़ाई करना चाहता है पर कर नहीं पाता, वह किन बन्धनों से ग्रस्त है, यह जान ही नहीं पाता; ग़लत मार्ग छोड़ सही दिशा में प्रविष्ट नहीं हो पाता।

इन बन्धनों से मुक्त होकर ही हम सच्चिदानन्द परमानन्द स्वरूप को पहचान सकते हैं और उसका गुणातीत प्रतिबिम्ब अपने अन्दर देख सकते हैं।

इस अध्याय में श्रीभगवान वही व्यावहारिक ज्ञान हमें प्रदान कर रहे हैं और गुणातीत के लक्षण यहाँ विस्तार से समझा रहे हैं।

वे अर्जुन से कहते हैं, एक बार फिर से मैं तुम्हें अच्छी तरह से ज्ञानों में श्रेष्ठ, उत्तम ज्ञान बतलाता हूँ -

भूयः प्रवक्ष्यामि, ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्

ज्ञान के भी स्तर हैं - एक है सामान्य ज्ञान और
दूसरा विज्ञान, अर्थात प्रपञ्चों का ज्ञान।

ज्ञानेश्वर जी महाराज कहते हैं- प्रपञ्च का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है, इस ज्ञान से ही हमारे जीवन में अभ्युदय आता है, भौतिक प्रगति आती है। बिना भौतिक प्रगति प्राप्त किये इस सृष्टि में हमारे जीवन का उन्नयन नहीं होता। अतः भौतिक ज्ञान और अलौकिक ज्ञान दोनों ही आवश्यक हैं।

अपनी भौतिक वृद्धि हेतु, हम विद्यालय में विभिन्न विषयों में विद्या ग्रहण करते हैं, लेकिन केवल उसी को ही सत्य मान लेना और वहीं थम जाना, ज्ञानेश्वर महाराज जी उसे अज्ञान कहते हैं। जब तक हम स्वयं को पहचान नहीं लेते, मैं कौन हूँ, इस सृष्टिकर्त्ता के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है, किसलिए मुझे यहाँ भेजा गया, वे मेरे से क्या चाहते हैं, इन प्रश्नों का उत्तर ही परम ज्ञान है। अपने मूल स्वरुप को खोज पाना ही परम ज्ञान है। लौकिक या आजीविका हेतु अर्जित ज्ञान परम ज्ञान नहीं।

ठाकुर रामकृष्ण देव जी के भाई उन्हें माता जगदम्बा की पूजा करने के लिए नियुक्त होने ले जाते हैं, पर रामकृष्ण जी माँ से अनुनय करते हैं मुझे उपजीविका के लिए यह कार्य नहीं करना अपितु जीवन विद्या सीखने हेतु करना है। इस परम ज्ञान को प्राप्त किये बिना जीवन खोखला रह जाता है।

श्रीभगवान अर्जुन से इसलिये कहते हैं की निःसंदेह तुम धनुर्विद्या, आयुर्वेद की विद्या या अन्यथा कोई और विद्या भी ग्रहण कर लो पर जब तक यह जीवन विद्या तुम नहीं सीखोगे तब तक तुम्हें आन्तरिक शान्ति नहीं प्राप्त होगी; निःश्रेयस की ओर नहीं बढ़ोगे, इसलिये मैं तुम्हें तब तक बताता रहूँगा जब तक यह ज्ञान और इसका ठहराव तुम्हारे अन्दर प्रविष्ट न कर जाए। इस ज्ञान को जानने के बाद जो इस पर चिन्तन - मनन करते हैं, वे परम सिद्धि को प्राप्त करते हैं। परमात्मा के साथ एकाकारिता ही परम सिद्धि है।

पतञ्जलि मुनि जी ने विभूतिपाद में कई सिद्धियाँ जैसे अणिमा, गरिमा, महिमा इत्यादि का वर्णन किया, परन्तु ये सब क्षणिक हैं, शाश्वत नहीं। प्रसिद्धि, ऐसी सिद्धि है जिससे हम सब भली-भाँति परिचित हैं। वह जब चली जाती है तो बहुत दुःख देती है। इन सिद्धियों के पीछे मुनि जन नहीं भागते, वे तो केवल परम ज्ञान के लिए लालायित रहते हैं और यही परम सिद्धि है।

गुरुदेव कहते हैं कि केवल श्रीमद्भगवद्गीता जी को कण्ठस्थ करने से सिद्धि नहीं प्राप्त होती, गीता पर व्याख्यान या विवेचन देने से भी नहीं। जब तक उसका मनन नहीं होगा, वह ज्ञान अन्दर प्रविष्ट नहीं होगा, तब तक परम सिद्धि प्राप्त नहीं होगी। जीवन में गीता जी को समाविष्ट करने के लिए ही, गुरुदेव का मंत्र है - गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें। सृष्टि के विकारों के कारण यह अविकारी परमज्ञान ढक गया।

ज्ञानेश्वर जी महाराज कहते हैं कि, यह ज्ञान ही हमारा मूल स्वरुप है, हमने स्वयं को क्यों खो दिया, स्वयं के साथ ही हमारा सम्बन्ध विच्छेद क्यों हो गया? संसार में हम इतना रम गए, इससे ऐसा नाता जोड़ लिया कि वह परम ज्ञान पराया हो गया। हम अपना जीवन ऐसे व्यतीत करते हैं मानों संसार से कभी विच्छेद नहीं होगा। यह परिवर्तनशील संसार हमें भ्रमित कर देता है और जब देह त्यागने का समय आता है स्वयं की वास्तविकता से अनभिज्ञ सम्भ्रमित जीव देह छोड़ता है।
जो मनुष्य इस ज्ञान से लिपट कर रहता है वह सब दुःखों से विमुक्त हो जाता है। व्यथा विमुक्त, आनन्द का मार्ग उसके जीवन में प्रविष्ट हो जाता है।

14.2

इदं(ञ्) ज्ञानमुपाश्रित्य, मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते, प्रलये न व्यथन्ति च॥14.2॥

इस ज्ञान का आश्रय लेकर (जो मनुष्य) मेरी सधर्मता को प्राप्त हो गये हैं, (वे) महासर्ग में भी पैदा नहीं होते और महाप्रलय में भी व्यथित नहीं होते।

विवेचन: युद्धक्षेत्र में श्रीभगवान ज्ञान की परिभाषा समझा रहे हैं। संघर्षपूर्ण जीवन की राह पर चलते हुए यह ज्ञान भी उदित हो जाये और इस ज्ञान के आलोक में हम अपने जीवन का मार्ग निश्चित करें यह श्रीभगवान की इच्छा है। अर्जुन की पंक्ति में बैठे हरेक के अन्तःकरण का तम दूर करने के लिए श्रीभगवान ज्ञान की ज्योति जलाना चाहते हैं।

इदं(ञ्) ज्ञानमुपाश्रित्य -

इस ज्ञान का आश्रय लेकर, इसमें प्रविष्ट होते हुए, जो इस ज्ञान में लिप्त हो अपना जीवन व्यतीत करता है वह मेरे साधर्म्य को प्राप्त करता है, श्रीभगवान यहाँ समझा रहे हैं।

साधर्म्य -

परमात्मा का धर्म क्या है, परमात्मा कैसे हैं? क्या श्रीभगवान शङ्ख, चक्र,पद्म, गदाधारी हैं या फिर राम के रूप में धनुषधारी हैं। हमें श्रीभगवान के सत्य स्वरुप को जान लेना चाहिए। श्रीभगवान तो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं -

सत्

अर्थात् अनन्त जीवन जो कभी समाप्त नहीं होगा, **चित्** अर्थात अखण्ड - ज्ञान से परिपूर्ण और

आनन्द -

अर्थात् असीम सुख जो कभी खण्डित नहीं होगा। यह स्वाधीन सुख है जो किसी पर भी निर्भर नहीं। हम सुख की सदैव कामना करते हैं पर सुख यदि दुःख में परिवर्तित हो जाये तो हतोत्साहित हो जाते हैं।

प्रलये न व्यथन्ति च -

प्रलय काल यानि देह छोड़ते हुए भी वह व्याकुल नहीं होता।

सर्गेऽपि नोपजायन्ते -

वह संसार में आता है सन्त महात्मा की तरह जो भगवान की भक्ति के लिए आते हैं या ज्ञान समाहित करने आते हैं; ज्ञान की धारा प्रवाहित करने आते हैं।
सृष्टि का चक्र है उत्पत्ति, स्थिति और लय।
मुख्यत: चार तरह के प्रलय बताए गए हैं -

नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत और आत्यन्तिक।

नित्य प्रलय- प्रतिदिन**,** जब हम सो जाते हैं

आत्यन्तिक - हिरण्यगर्भ में यह सारी सृष्टि विलीन हो जाती है। ज्ञानी मनुष्य इस तथ्य से भली-भाँति परिचित हैं, इसलिए व्यथित नहीं होते। वे आते हैं, रहते हैं और चले जाते हैं। गुरुदेव एक सुन्दर कहानी सुनाते हैं -

एक साहूकार ने बहुत धन कमाया। अत्यधिक धन होने के कारण साहूकार की अगली पीढ़ी निकम्मी हो गई। अब साहूकार को अपनी अगली पीढ़ी को लेकर बहुत चिन्ता हो गई। उसने अपने एक विश्वसनीय को बुलाकर कहा कि मेरा सारा धन एक जगह छिपा दो और मेरे पौत्र यदि कुशल निकलें तो उन्हें यह धन निकालकर दे देना। बाद में हुआ भी ऐसा। साहूकार के बेटों ने सारा प्रत्यक्ष धन उड़ा दिया और ऋण में डूब गए। साहूकार के पौत्र योग्य थे और विदेश से पढ़ाई कर लौटे। देश वापस लौटने पर अपनी आर्थिक परिस्थिति देख वे व्यथित हो गए। तब साहूकार के मित्र ने उन्हें दादा द्वारा छुपाये हुए धन का पता बताया। धन पा कर वे बहुत आनन्दित हो उठे और साहूकार के मित्र को अनेकानेक धन्यवाद देने लगे। तब साहूकार के मित्र बोले कि मैंने धन नहीं दिया, मैंने तो केवल आपके धन के ऊपर का आवरण हटाया।

उसी प्रकार गुरु की कृपा से हमारे ज्ञान धन के ऊपर का आवरण हटकर हमारा ज्ञान प्रस्फुटित होता है। यह धन अन्तर्निहित

धन है। यहाँ श्रीभगवान् अर्जुन के मोह का आवरण दूर कर उसे ज्ञान प्रदान करना चाहते हैं।

ज्ञानेश्वर जी महाराज कहते हैं -हम अपने मूल स्वरुप को भूल गए। हम केवल देह नहीं, चैतन्य हैं। जड़ देह है और सम्पूर्ण जगत में एक ही चैतन्य है, इन दोनों के सहयोग से सृष्टि क्रियान्वित है। हम जड़ उसे भी कहेंगे जिसे न स्वयं का और न ही औरों का ध्यान है।

14.3

मम योनिर्महद्ब्रह्म, तस्मिन्गर्भं(न्) दधाम्यहम्।
सम्भवः(स्) सर्वभूतानां(न्), ततो भवति भारत॥14.3॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! मेरी मूल प्रकृति तो उत्पत्ति स्थान है (और) मैं उसमें जीवरूप गर्भ का स्थापन करता हूँ। उससे सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

विवेचन: हे भारत ! तुम धनुर्धारी तो हो ही और अब तुम में अन्तर्ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा जाग्रत हो गयी है।

योनिर्महद्ब्रह्म -
हमारे यहाँ शिवजी के स्वरुप का बड़ा ही अनूठा विवरण है - अर्द्ध पुरुष और अर्द्ध नारी, जो माँ जगदम्बा का स्वरुप है, इसलिये भगवान शिव को साम्ब (स + अम्ब) अर्थात अम्बे सहित भी कहा जाता है। प्रकृति और पुरुष के संयोग से ही सृष्टि का निर्माण हुआ। हमारे यहाँ शिवशक्ति, शिव पार्वती की पूजा होती है। ब्रह्माण्ड यानि सृष्टि को चलाने वाली शक्ति है। श्रीभगवान स्त्री का सम्मान करते हैं इसलिए उसे महद्ब्रह्म कहते हैं और कहते हैं कि मैं उसकी पूजा करता हूँ।

तस्मिन्गर्भं(न्) दधाम्यहम् -
मैं उसमें गर्भ प्रदान करता हूँ। सृष्टि में सृजन करने हेतु ईश्वर योनि में चेतन स्वरुप गर्भ प्रदान करते हैं।
सम्भवः(स्) सर्वभूतानां(न्) -
इसी से सब भूत प्राणियों की उत्पत्ति होती है। जड़-चेतन, प्रकृति पुरुष, के संयोग से गर्भ धारणा हुई और सृष्टि में सभी प्रकार के भूत मात्र की निर्मिति हुई। सभी प्राणियों में दूसरी पीढ़ी का जन्म इसी प्रकार से होता है और नवसृष्टि का निर्माण होता रहता है।

14.4

सर्वयोनिषु कौन्तेय, मूर्तयः(स्) सम्भवन्ति याः।
तासां(म्) ब्रह्म महद्योनिः(र्), अहं(म्) बीजप्रदः(फ्) पिता॥14.4॥

हे कुन्तीनन्दन ! सम्पूर्ण योनियों में प्राणियों के जितने शरीर पैदा होते हैं, उन सबकी मूल प्रकृति तो माता है और मैं बीज-स्थापन करने वाला पिता हूँ।

विवेचन: श्रीभगवान् अर्जुन को कौन्तेय (कुन्ती के पुत्र) कहकर सम्बोधित करते हैं और समझाते हैं कि जिस प्रकार अर्जुन का जन्म कुन्ती के गर्भ से हुआ उसी प्रकार सभी योनियों का जन्म गर्भ में होता है। चौरासी लक्ष विभिन्न योनियाँ हैं, पर उनमें एक समान तत्त्व वह चेतन स्वरुप ही है। इस संसार में इतनी योनियाँ हैं कि यदि कोई अपने समस्त जीवन काल में केवल उनको ही देखता रहे तो भी यह कार्य पूर्ण न कर पाए। असंख्य प्रकार के जीव, पक्षी, मछलियाँ इत्यादि हमें उस विविधता का आभास करवाते हैं; परन्तु इन विविध मूर्तियों में एक समान तत्त्व है जो चैतन्य का स्रोत है। इन योनियों में बीज प्रदान करने वाले परमपिता एक ही हैं जिनका प्रतिबिम्ब इन सब योनियों में दिखता है।

एकोहम् बहुस्याम्
हर देश में तू, हर वेश में तू, तेरे नाम अनेक, तू एक ही है।

हमें विविधता में एकता की सराहना करनी चाहिये, अन्यान्य गुणों से मण्डित सृष्टि का मूल स्त्रोत एक ही है। इन सब जीवों को सृष्टि ने बाँध रखा है। पृथ्वी ने हमें गुरुत्त्वाकर्षण से बाँध लिया है। पृथ्वी को सूरज ने बाँध लिया है और सूरज को ब्रह्माण्ड के केन्द्र के गुरुत्त्वाकर्षण ने बाँध लिया है। आगम का एक बहुत सुन्दर वाक्य है-

पाशबद्धो भवेज्जीव: पाशमुक्त: सदाशिव: ।।

पाशबद्ध होने पर जीव होता है।

पाशमुक्त होने पर सदाशिव बन जाते हैं।

जो बँधन में है वह जीव है किन्तु जो बँधन मुक्त है वह सदाशिव हैं। शिव अर्थात मङ्गल, सदा प्रसन्नचित्त। हम सब सृष्टि में रहते हुए, गुणों के बन्धन से बँध गए और जब तक हम गुणों के स्वरूप को नहीं जानते तब तक बन्धन मुक्ति का मार्ग भी हमारे लिए प्रस्फुटित नहीं होता। अतः अपने बन्धनों को पहचानना एवं जानना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

14.5

सत्त्वं(म्) रजस्तम इति, गुणाः(फ्) प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो, देहे देहिनमव्ययम्॥14.5॥

हे महाबाहो! प्रकृति से उत्पन्न होने वाले सत्त्व, रज (और) तम – ये (तीनों) गुण अविनाशी देही (जीवात्मा) को देह में बाँध देते हैं।

विवेचन: श्रीभगवान् अर्जुन को महाबाहो कहकर सम्बोधित करते हैं, वे अर्जुन के गुरु होने के नाते यह भी सुनिश्चित करते हैं कि अर्जुन का मनोबल कम न हो। अतः वे उसे महान योद्धा, महा बलशाली की उपाधियों से सुसज्जित करते हैं, एक प्रेरणादायक गुरु की भाँति।

वर्तमान में चुनाव के कारण जो हतोत्साह एवं विषाद का वातावरण बना हुआ है, उसे दूर करने हेतु गुरुदेव ने भी अपने आशीर्वचन, एक प्रेरणा के स्वरुप में आज सबके साथ साझा किए।

श्रीभगवान् अर्जुन को समझाते हैं कि सत्त्व, रजस और तम की रस्सियाँ प्रकृति से ही उत्पन्न होती हैं। जीव को संसार से बाँधने के लिए ये माया रुपी रस्सियाँ पैदा हो जाती हैं। हमारा मूलस्वरुप, हमारी अविनाशी चेतना है, जो गुणातीत, सच्चिदानन्द स्वरुप, स्वयं परमात्मा का ही प्रतिबिम्ब है। ये तीनों गुण उस अव्यय चैतन्य को भी अपने मूलतः स्वरुप को विस्मृत कर इस देह के साथ बाँध देते हैं। इसी कारण जीव, अपने स्वाभाविक अस्तित्व को भूलकर स्वयं को देह से जोड़ लेता है। नाशवान देह के कारण स्वयं को विनाशशील मानने लगता है। यही उसके दुःख का मूल कारण बन जाता है जो उसके सच्चिदानन्द स्वरुप से परे है।

विनोबा भावे जी एक सुन्दर उदाहरण देते हुए यह तथ्य स्पष्ट करते हैं, कि जिस प्रकार एक गैस का गुब्बारा ऊपर न उड़ जाए इसलिए उसे एक भारी पत्थर से बाँधना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार यह चेतन जिसका मूल स्वरूप व्यापक है और वह व्यापकता के साथ एकाकार होना चाहता है, वह इस देह में इन गुणों के अधीन हो बन्ध जाता है। ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं:-

एऱ्हवीं ज्ञान हें आपुलें । परी पर ऐसेनि जालें ।

जे आवडोनि घेतलें । भवस्वर्गादिक ॥ ४२ ॥

जैसे सूर्योदय होने पर अन्य ग्रह विलुप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार सच्चा एवं उत्तम ज्ञान वही है जो जीव को उसके मूलतः स्वरुप से भेंट करवा दे। उस ज्ञान की प्राप्ति ही हमारा परम ध्येय और कर्त्तव्य होना चाहिए। उसी मार्ग पर चलते हुए दुःखों से विमुक्ति भी प्राप्त हो जाएगी।

सत्त्वं रजस्तम इति, गुणाः प्रकृतिसम्भवाः

आगे श्रीभगवान् समझाते हैं कि ये गुण भी मेरे ही कारण हैं और इन सबकी अपनी अपनी विशेषताएँ हैं -

सत्वगुण ज्ञान का प्रकाश है।

रजोगुण का लक्षण क्रियाशीलता है।

और **तमोगुण** क्रियाशून्यता है।

सत्वगुण के कारण क्रिया सही दिशा में चलती है, रजोगुण के कारण हम क्रिया करने की इच्छा रखते हैं और तमोगुण के कारण क्रिया रुकती है।

ये तीनों गुण हमारे जीवन में उसी प्रकार से क्रियान्वित हैं जिस प्रकार एक गाड़ी में स्टेयरिंग, पेट्रोल और ब्रेक होते हैं। स्टेयरिंग यानि सत्वगुण से गाड़ी सही दिशा में चलती है। पेट्रोल अर्थात रजोगुण, के कारण चलने की क्रिया होती है और तमोगुण यानि ब्रेक जो गाड़ी को रोकने का काम करते हैं। इस गाड़ी का मूल उद्देश्य एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना है, श्रीभगवान ने भी इसी उद्देश्य से ये देह रूपी वाहन का साधन सम्भव करवाया परन्तु हम इस देह में ही बँध गए। हमने इस गाड़ी को ही अपना स्वरूप मान लिया, अब इस गाड़ी से उतरना पड़ेगा अर्थात गुणातीत होना पड़ेगा। ये गुण जीवन जीने के लिए प्रदान किये गए; जीवन में ज्ञान का आलोक आवश्यक है, क्रियाशील भी होना चाहिए, जो रजोगुण द्वारा ही सम्भव है, परन्तु क्रिया थमनी भी चाहिए।

प.पू.गुरुदेव जी दाँतों का उदाहरण देते हैं। हमारे दाँत रजोगुण के कारण आते हैं, उनकी सुन्दरता सत्त्वगुण पर आधारित है और आयु के साथ दाँत आने की क्रिया तमोगुण के कारण रुकती है। इसलिए हर गुण का महत्त्व है। ये गुण हमारी दैनिक क्रियाओं में सदैव झलकते रहते हैं। सत्त्वगुण सुबह प्रबल रहता है, रजोगुण दिनभर साथ देते हुए क्रिया शीलता बनाये रखता है और रात में तमोगुण के कारण ही हम पग पसार चैन की नींद सो पाते हैं। विश्रान्ति तमोगुण से ही सम्भव है। अतः हर गुण उपयोगी है और इनका विवेकशीलता से उपयोग करते हुए हमें जीवन व्यतीत करना है, जिस प्रकार सन्त महात्मा गुणों का उपयोग करते हैं पर गुणातीत रहते हैं। यही ज्ञान हमें अपने जीवन में उतारना है।

14.6

तत्र सत्त्वं(न्) निर्मलत्वात्, प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति, ज्ञानसङ्गेन चानघ॥14.6॥

हे पाप रहित अर्जुन! उन गुणों में सत्त्वगुण निर्मल (स्वच्छ) होने के कारण प्रकाशक (और) निर्विकार है। (वह) सुख की आसक्ति से और ज्ञान की आसक्ति से (देही को) बाँधता है।

विवेचन: श्रीभगवान अर्जुन को अनघ, निष्पाप बुला रहे हैं क्योंकि अर्जुन में निर्मल सत्त्वगुण उदित हो गया है।

यह सत्त्वगुण **प्रकाश** देने वाला है, **ज्ञान उदित** करने वाला है।
अनामयम् - सत्त्वगुण रोगों से मुक्त करने वाला भी है।

इन सब गुणों के होते हुए भी, सत्त्वगुण भी एक बन्धन ही है। यह हमें सुख और ज्ञान की लालसा से बन्धित करता है, जिसके कारण अहङ्कार का निर्माण होता है।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं कि ज्ञान जब हमारे अन्दर समाहित होने लगता है, तब 'मैं ज्ञानवान हूँ, मैं औरों से अलग हूँ' के भाव जाग्रत कर देता है। तब यह ज्ञान हमें गिराता ही है।

हम श्रीमद्भगवद्गीता जी का ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसे कण्ठस्थ करते हैं, क्योंकि उससे निर्मल आनन्द प्राप्त होता है। ज्ञान की

आराधना करते हुए हम एक सुखमय अवस्था में चले जाते हैं। घर में यदि कोई बालक सत्त्वगुण से प्रेरित हो दिन भर श्रीमद्भगवद्गीता जी के अध्ययन में लगा हुआ है और माँ के विशेष आग्रह पर भी घर के काम-काज में हाथ नहीं बँटाता, सत्त्व में ही रमना चाहता है, कर्म की हलचल उसे भाती नहीं है, यह भी अनुचित ही हो जाता है।

सत्त्वगुणी ज्ञान से बन्धित हो कर्म करना नहीं चाहता। सत्त्वगुण भवरोग से दूर निकालने वाला है परन्तु बाँधने वाला भी है। इसकी मूल विशेषता प्रकाश है पर दोष (साइड इफ़ेक्ट) बन्धन है। जब 'मैं और मेरा परिवार' मेरे सुख का दायरा बन जाते हैं और इस कम्फर्ट ज़ोन से मैं निकलना ही नहीं चाहता। श्रीमद्भगवद्गीता जी की अनुभूति आ रही है, नित नया ज्ञान प्राप्त हो रहा है, ज्ञान की लालसा जग रही है, इसलिए सृष्टि में अब कुछ भी उथल -पुथल हो, मैं वहाँ नहीं जाना चाहता। यह भी एक प्रकार का बन्धन है। अगर सृष्टि की पुकार है, राष्ट्र की पुकार है तो कर्म की हलचल हमें करनी ही चाहिए।

ठाकुर रामकृष्ण देव जी रोचक प्रसङ्गों से तथ्यों को बड़ी सुगमता से समझाते थे। उन्होंने इन गुणों की उपमा सोने, चाँदी और लोहे से निर्मित तीन श्रृंखलाओं से की है। तमोगुण की रस्सी लोहे की, रजोगुण की रस्सी चाँदी की और सत्त्वगुण की रस्सी सोने की। लेकिन श्रृंखला चाहे सोने की हो, चाँदी की, या लोहे की, बाँधती तो सभी हैं ।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं कि ज्ञान भी बँधन में डालता है। दोनों से बचकर चलना चाहिए, उसके बाद ही गुणातीत हो सकते हैं।

14.7

रजो रागात्मकं(म्) विद्धि, तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय, कर्मसङ्गेन देहिनम्॥14.7॥

हे कुन्तीनन्दन! तृष्णा और आसक्ति को पैदा करने वाले रजोगुण को (तुम) रागस्वरूप समझो। वह कर्मों की आसक्ति से देही जीवात्मा को बाँधता है।

विवेचन: रज का अर्थ है रञ्जन करना। रजोगुण की प्रवृत्ति बारम्बार मनोरञ्जन माँगती है। यह गुण कार्य की हलचल में प्रविष्ट करवाता है, कर्म करवाता है जिससे यश की प्राप्ति होती है। रजोगुणी व्यक्ति यश प्राप्त करता है।
रामायण के तीन पात्र - रावण, विभीषण और कुम्भकरण, तीनों की गुणप्रधान विशेषताएँ हैं। विभीषण सत्त्वगुणी है, रावण रजोगुणी है और कुम्भकरण तमोगुणी है - वह केवल सोना चाहता है।
रावण की उद्यमशीलता उसे किस प्रकार हानि पहुँचाती है। दूसरे का राज्य हड़पना, उसकी पत्नी हड़पना जैसे अनैतिक कर्म करवा उसे अधोगति की ओर ले जाती है।
विभीषण का सत्त्व श्रीराम जी से मेल करवा देता है।
श्रीभगवान हरेक गुण को यहाँ विस्तार से समझा रहे हैं। रजोगुण का स्वरूप राग अर्थात् आसक्ति है, जिससे तृष्णा की वृद्धि होती है।
भगवान गौतम बुद्ध कहते हैं कि रजोगुण कभी न बुझने वाली प्यास को जन्म देता है। एक के बाद एक वस्तुओं के पीछे दौड़ाता रहता है। प्रतिष्ठा, धन, मान सम्मान के पीछे दौड़ते -दौड़ते जीवन समाप्त होने को आता है पर लालसा समाप्त नहीं होती।

रजोगुण की उत्पत्ति तृष्णा, कामना, तीव्र इच्छा से होती है।

श्रीभगवान अर्जुन को सीख दे रहे हैं कि कर्म करते हुए उसके बन्धन से निकल पाना, उसके फल से मोह को त्यागना, उसके कर्त्ता के भाव से निर्लिप्त रहना **कर्मयोग** है।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं - कर्म भी बन्धन है। हमें कर्म से आसक्ति हो जाती है और फिर हम वही दोहराना चाहते हैं अन्य कोई कार्य नहीं करना चाहते। इसका अनुभव सेवानिवृत्त हुए कर्मचारियों को भली प्रकार होता है। पदाधिकारी का दायित्व निभाते हुए उसमें वे ऐसे रम जाते हैं और अहङ्कार पाल लेते हैं कि हमसे श्रेष्ठ कोई और नहीं पर जब सेवा निवृत्त हुए तो नया पदाधिकारी भी सक्षमता से कार्यभार का निर्वाह करने लगता है।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं कि कर्म में आसक्ति ना रखो। जिस प्रकार माली क्यारी बनाता है और पानी वहाँ से बहने लगता है। वह मार्ग अगर अवरुद्ध हो जाये तो पानी नई राह पकड़ लेगा। इसी प्रकार हमें भी अपने जीवन की बागडोर अपने परमेश्वर के हाथों सौंप देनी चाहिए ताकि कर्मबन्धन से मुक्ति मिल पाए।

श्रीभगवान ने स्वयं ऐसा ही जीवन जी कर प्रमाणित किया। वन में गौ चराईं, गोकुल में बाँसुरी बजाई, राजसूय यज्ञ में झूठी पत्तलें भी उठाईं, पशुओं की सेवा और मरहम पट्टी भी की - किसी कर्म से बँधे नहीं जब जब जो कर्म आया सब करने के लिए तत्पर रहते।
गुरुदेव कहते हैं-

जानाति इच्छते यतन्ति

तीन क्रम हैं - हम कुछ बातें जानते हैं, जिससे उसे पाने की इच्छा निर्माण होती है और फिर उसे पाने के लिए प्रयत्न करते हैं। यह क्रम हमें दौड़ाता रहता है।

14.8

तमस्त्वज्ञानजं(म्) विद्धि, मोहनं(म्) सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभि:(स्), तन्निबध्नाति भारत॥14.8॥

हे भरतवंशी अर्जुन ! सम्पूर्ण देहधारियों को मोहित करने वाले तमोगुण को तुम अज्ञान से उत्पन्न होने वाला समझो। वह प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा देहधारियों को बाँधता है

विवेचन: श्रीभगवान् कहते हैं तमोगुण अज्ञान से जन्म लेता है। यह सभी देहधारियों को मोहित करता है और इसके कारण त्रुटियाँ होती हैं।

आलस्य यानि जड़त्त्व -

कुछ करने की इच्छा न होना, निद्रा - उत्साहहीन जीवन व्यतीत करना। यह गुण सबको बाँध देता है। बिस्तर, कुर्सी और आजकल मोबाइल फोन में उलझे रहना, फेसबुक इत्यादि पर अनावश्यक समय व्यतीत करना तमोगुण के ही लक्षण हैं। किसी भी वस्तु से अत्याधिक सम्मोहित रहना तमोगुण का ही प्रमाण है।

अज्ञान के दो लक्षण हैं - आवरण और विक्षेप

आवरण का अर्थ होता है, जो सही है उसे ढक देना, मूल ज्ञान को ही ढाँप देना!
विक्षेप का अर्थ है, जो सही है उसे ग़लत करार देना।
इसीलिये बहुत प्रयत्न करने पर भी हम कई बार अज्ञानी को सही राह पर नहीं ला सकते।

श्रीभगवान् यहाँ अर्जुन को **भारत** कहकर सम्बोधित करते हैं, क्योंकि उनके अन्दर ज्ञान में रम जाने की प्रवृत्ति जाग्रत हो गयी। हमारे देश का नाम भारत है पर विडम्बना देखिये, अज्ञानता के कारण कैसे ढक गया।
भा - यानि आभा, ज्ञान, प्रकाश, अतः भारत मूलतः ज्ञान में रमने वाला देश है।

श्रीभगवान् अर्जुन को यहाँ जगाते हैं। अर्जुन का एक नाम गुडाकेश है, जिसने निद्रा पर विजय प्राप्त की। श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि तुम भारत होते हुए भी तमोगुण की निद्रा में सुप्त हो, इसलिए अपने कुटुम्बियों को ही अपना सर्वस्व मान रहे हो और अपने क्षत्रिय धर्म के कर्त्तव्य को भूल रहे हो।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं कि कई मनुष्यों में तमोगुण इतना प्रधान हो जाता है कि वे अज्ञान के गहरे सागर में डूब जाते हैं, फिर तुम उन्हें अमृत पान के लिए भी राज़ी न कर पाओगे।

स्वामी विवेकानन्द जी ने भारत देश की विडम्बना पर प्रकाश डालते हुए कहा कि सत्त्वगुण प्रेमी यह देश कैसे तमोगुण के आवरण से लिप्त हो गया। इसलिये वे लोगों से कहते कि यदि तुम श्रीमद्भगवद्गीता जी के सही ज्ञान को नहीं समझ पा रहे तो उसे

छोड़ कोई फुटबॉल जैसे खेल सीख लो ताकि रजोगुण में प्रविष्ट हो कर्म की हलचल करो। इस प्रकार वह देश को तमोगुण से रजोगुण में लाना चाहते थे।

14.9

सत्त्वं(म्) सुखे सञ्जयति, रजः(ख्) कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः(फ्), प्रमादे सञ्जयत्युत॥14.9॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! सत्त्वगुण सुख में (और) रजोगुण कर्म में लगाकर (मनुष्य पर) विजय करता है। परन्तु तमोगुण ज्ञान को ढककर एवं प्रमाद में लगाकर (मनुष्य पर) विजय करता है।

विवेचन: सत्त्व के कारण सुख बढ़ता है, ज्ञान की लालसा बढ़ती है लेकिन कर्म की हलचल समाप्त हो जाती है। सत्त्वगुण सुख और ज्ञान के बन्धन में डाल अहङ्कार को जन्म देता है और मनुष्य दूसरों से कटता जाता है। रजोगुण में रहकर, ज्ञान की इच्छा नहीं होती, कर्म में लिप्त हो वर्कहोलिक (workaholic), काम की लत में ऐसा फँसता है कि कुछ और सुध नहीं रहती। तमोगुण ज्ञान को ढकते हुए प्रमाद में आसक्त करता है, पाप फैलाता है। किसी शायर ने खूब कहा है-

पत्ता भी अगर हिलता है तो उस की रज़ा से।
और बंदा गुनहगार है मा'लूम नहीं क्यूँ।।

पाप तमोगुण के बढ़ने के कारण फैलते हैं। हम तीनों गुणों के गुणदोष जाँच कर अपने व्यवहार की समीक्षा करें ताकि स्वयं को भली-भाँति पहचान लें। यह तीनों गुण एक दूसरे पर हावी होते हैं। कोई भी पूर्णतः सात्त्विक, राजसिक या तमोगुणी नहीं होता।

14.10

रजस्तमश्चाभिभूय, सत्त्वं(म्) भवति भारत।
रजः(स्) सत्त्वं(न्) तमश्चैव, तमः(स्) सत्त्वं(म्) रजस्तथा॥14.10॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्व गुण बढ़ता है, सत्त्व गुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण (बढ़ता है) वैसे ही सत्त्वगुण (और) रजोगुण को दबाकर तमोगुण (बढ़ता है)।

विवेचन: श्रीभगवान् कहते हैं रजस और तम गुण को दबाते हुए सत्त्व गुण का अभ्युदय होता है, सत्त्व और तम को दबाते हुए रजोगुण का प्रभाव बढ़ता है तथा सत्त्व और रज को ढकते हुए तम बढ़ता है। इसलिये रात को हम तमोगुण के अधीन होते हैं पर सुबह होते ही कर्म करने की इच्छा होती है क्योकि रजोगुण प्रभावी हो जाता है। ज्ञान की आराधना में सत्त्वगुण प्रभावी है, इसलिए सत्सङ्ग/ विवेचन में लोग जुड़ते हैं पर कुछ समय बाद रजोगुण हावी होने लगता है, रसोई की चिन्ता सताने लगती है, कुछ का मन अपने प्रिय मनोरंजक कार्यक्रम को तरसने लगता है अर्थात् तमोगुण बढ़ गया और सत्त्व ढक गया। एक जगह पर बैठे बैठे कई लोगों को उबासी आने लगती है। बच्चों को भी पढ़ते - पढ़ते झपकी आ जाती है, क्योंकि सत्त्व के ज्ञान को तमोगुण ढक देता है।

श्रीभगवान् समझाते हैं कि कैसे यह तीनों गुण समय - समय पर एक दूसरे पर हावी हो, एक दूसरे को ढकते हैं और अपना प्रभाव बढ़ाने लगते हैं। हमें अपने विवेक से कैसे स्थिति अनुसार अपनी ध्येय प्राप्ति के लिए इनका उपयोग करना है और फिर गुणातीत हो कर्म के बन्धन से बचना है, इस ज्ञान का बोध श्रीभगवान यहाँ करवा रहे हैं।

प्रकृत्ति के हर कण में इन्हीं तीनों गुणों का तालमेल बढ़ता और घटता रहता है। प्रत्येक अणु जो सृष्टि में उत्पन्न हर वस्तु का आधार है; उसकी रचना में भी सत्त्व यानि प्रोटोन्स, तम यानि न्यूट्रोंस और रज यानि इलेक्ट्रॉन्स की संरचना से ही हर क्षण परिवर्तन होता रहता है।

जीवन जीने के सही ढंग को सिखाने वाला यह महत्त्वपूर्ण अध्याय है जो हमें दूसरों के साँचे में न ढलते हुए स्वयं की सच्ची पहचान खोजने के लिए प्रेरित करता है।
प.पू.गुरुदेव जी को नमन करते हुए आज का सुन्दर विवेचन सम्पन्न हुआ।

विचार - मन्थन (प्रश्नोत्तर):-

प्रश्नकर्ता : प्राची जी
प्रश्न : विधि का अर्थ क्या है? अभी आपने प. पू. गुरुदेव के कार्यसिद्धि हेतु निरन्तर प्रयासशील रहने के प्रेरक सन्देश (कार्य प्रबन्धन) के बारे में बताया कृपया उसका वीडियो ग्रुप पर पोस्ट करवा दीजिए।

उत्तर : विधि का अर्थ है जानना, किसी भी कार्य की प्रक्रिया को समझना। प. पू. गुरुदेव के कार्यसिद्धि हेतु निरन्तर प्रयासशील रहने के प्रेरक संदेश के वीडियो के बारे में सम्बन्धित विभाग को सूचित किया जाएगा। वैसे अधिकांश ग्रुपों में वीडियो पोस्ट किया जा चुका है।

प्रश्नकर्ता : सत्येंद्र जी

प्रश्न : आपने बताया है कि आत्मा सदैव रहती है वो कभी मरती नहीं । जो मरती नहीं तो फिर पुनर्जन्म की बात कैसे आती है?

उत्तर : यह सत्य है कि आत्मा तो अमर है, न कभी जन्म लेती है न मरती है। परन्तु हम देह को आत्मा मान लेते हैं। देह तो नाशवान है। आत्मा जब देह का त्याग करती है तो उस शरीर की अशुद्धियाँ, मनोविकार साथ रह जाते हैं। इनसे मुक्त होने पर ही शुद्ध आत्म तत्त्व की स्थिति प्राप्त होती है। उदाहरणस्वरूप शुद्ध जीवात्मा चौबीस कैरट सोना है। इसमें देह के स्वरूप के अनुसार विभिन्न अशुद्धियाँ काम, क्रोध आदि विकारों के मिल जाने से यह अठारह, बीस, बाईस आदि कैरट का आभूषण बन जाता है। इन अशुद्धियों का त्याग करने के लिए ही पुनर्जन्म लेना पड़ता है। जब पूर्ण रूप से मनोविकारों का परित्याग हो जाता है तो पुनर्जन्म नहीं होता। यह मानव जन्म में ही सम्भव है, इसलिये मानव जीवन को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। जन्म - मरण तो देह का होता है, आत्मा का नहीं।

प्रश्नकर्ता : सीमा जी

प्रश्न : हमें सत्त्व, रज और तीनों गुणों की आवश्यकता होती है। पर अल्बर्ट आइंस्टाइन (Albert Einstein) के सापेक्षता के सिद्धान्तनुसार हमें इसका सन्तुलन भी रखना चाहिए क्या?

उत्तर : प्रकृति के तीनों गुणों का संतुलन अत्यन्त आवश्यक है। प्रकृति बिगड़ गई तो सब कुछ बिगड़ जाता है। किसी भी कार्य को सिद्ध करने हेतु इन त्रिगुणों का सन्तुलन अत्यन्त आवश्यक है।

।। ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||